अक्षर-अक्षर रक्त-भरा

□ निदा नवाज़

अक्षर-अक्षर रक्त-भरा

(कविताएँ)

निदा नवाज़

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, 1997

आवरण : रवि कौल

मूल्य : एक सौ पचास रूपये

मिलने के पते :—

1. **किताब घर,**
   एम.ए. रोड, लाल चौक, श्रीनगर—190001 (कश्मीर)
2. **किताब घर,**
   कनाल रोड, जम्मू—तवी—180001.
3. **नवाज़-लॉज,**
   कोयल—पुलवामा—192301 (कश्मीर)

लेज़र प्रिंटिंग एण्ड कम्पोज़िग :

कोहली. जे.के.
'गैलेक्सी ग्रॉफिक्स'
नीचे गुम्मट, जम्मू—180001.

मुद्रक :

AKSHAR AKSHAR RAKT BHARA (POETRY)

by : Nida Nawaz

Price per copy : **Rs. 150 only**

○

अपने नन्हें, मासूम बच्चों
नरगिस, दीपू और आशू
के नाम

जो रात को दरवाज़े पर दस्तक पाते ही चौंक जाते हैं और छिपा लेना चाहते हैं मुझे अपनी नन्हीं पीठ के पर्दे की ओट में। जिनकी आँखों के दर्पण में, मैं कभी आतंकित वर्तमान और कभी भविष्य के लिये ढेर सारा प्यार, एकता, शान्ति और मुस्कुराती मानवता देखता हूँ।

...और अपने
सहमे हुए प्यार के नाम

—— ☐ ——

आभार

लेखक जम्मू–कश्मीर कल्चरल अकादमी के आंशिक आर्थिक–सहयोग के लिये आभारी है और इस कृति की त्रुटियों के लिये स्वयं उत्तरदायी है।

(प्रौढ़ता का परिचय)

'बहुत दिनों के बाद' अच्छी कविताएँ पढ़ने को मिलीं। 'निदा नवाज़' नाम देखकर मैंने सोचा कि यह युवक उर्दू–नुमा हिन्दी लिखने की कोशिश कर रहा है। मुझे मालूम है कि ऐसे 'लेखक' न इधर के रहते हैं, न उधर के। इस प्रदेश में हिन्दी तो वैसे ही घाटे का सौदा है– सौदा क्योंकि आज का युग पूंजी का युग है और कविता मात्र विक्रय की वस्तु बन कर बेहद डरी–डरी है।

निदा नवाज़ की पहली कविता जो मैंने पढ़ी, वह 'योजना' (मासिक जम्मू) में प्रकाशित हो चुकी थी। कविता पढ़ी तो मेरी धारणा बदली– एकदम ! एक सुखद आश्चर्य से मैं कविता– 'चेतना सरोवर के तट पर' पढ़ता चला गया। युवा मानसिकता किस तरह मोहभंग से ग्रस्त है, इसकी सुन्दर और सशक्त अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। कविता की आरम्भिक पंक्तियों ने ही मुझे भाव और विचार के मिश्रित 'आलोक' में पहुँचा दिया। 'सांझ की लालिमा' परम्परा से रोमांटिक अनुभूति की द्योतक रही है; थोड़ा और आगे बढ़ें तो साम्यवादी क्रान्ति से जुड़ने लगता है यह प्रतीक। लेकिन निदा के यहाँ यह प्रयोग नितान्त मौलिक है–

मैं पूछता हूँ/सांझ की लालिमा से/क्या रक्त उसी रंग का नाम है/ जो हमारे हर शब्द का स्वभाव/हर कविता का अभिमान– (और आगे की पंक्ति पूरी तरह एक मोड़ ले लेती है–) ***और हर पुस्तक का शीर्षक/ठहर गया ?***

बिम्ब की रक्षा करता हुआ कवि अर्थ का व्यतिरेक प्रस्तुत करने में पारंगत है– ***मैं पूछता हूँ/आकाश में तैरते सूर्य से/क्या न्याय उसी का***

नाम है/कि मनुष्य हर पल/सौ बार मरे/और उस पर जीवित होने का कड़ुवा आरोप लगे ?

'मरना' जीने का पर्याय बन जाए— एक सामान्य अनुभूतिजनित तथ्य है। लेकिन कवि इस अनुभूति से आगे निकलकर हमें बताता है कि बार–बार मर कर यह 'जीना' मात्र एक 'आरोप'— जीवित होने का कड़वा आरोप बन कर रह गया है। कवि की अनुभूति का एक स्तर वह है जहाँ वह मर कर भी जीवित होने का आरोप सहने को बाध्य है और इसी में निमज्जित दूसरा स्तर वह है जो कवि की छटपटाहट व्यक्त करता है मानो वह पुकार–पुकार कर कहता है— नहीं; मुझ पर जीवित होने का आरोप मत लगाओ !

कवि रोमांटिक क्षणों को भी भोगता है लेकिन वातावरण में भरा ज़हर उसे बार–बार उस अनुभूति से बाहर घसीट लाता है। यह दर्दनाक स्थिति न तो रोमांटिक रह पाती है, न किसी से कर्ज़ ली गई है। यह मात्र सच है, ज़िन्दकी का सच; वस्तुतः यही ज़िन्दगी है, यह 'सच' ज़िन्दगी से अलग नहीं है। हाँ एक चाह शेष रहती है— एक स्वप्न देखने की— ***कि उस/दोपहर की रुपहली धूप को/केवल एक बार मैं/फिर से देखूँ/हड्डियों के पिंजरे से निकलूँ/आकाशों में उड़ जाऊँ।***

रोमांटिक क्षणों का निरन्तर बढ़ता अभाव कवि को कचोटता नहीं। कवि की अनुभूति इस स्थिति को बहुत पीछे छोड़ आई है। अब यह अनुभूति इतनी सहज और सामान्य हो गई है कि कवि को ऐसे शब्दों की ज़रूरत नहीं रही जिनसे वह दूसरों को चौंका सके। घर का मोह कवि की अंतश्चेतना में गहरे धंसा है। लेकिन अभिव्यक्ति का ठंडापन कवि की प्रौढ़ता का परिचय देता है—

तुम साक्षी रहना/वितस्ता/कि मेरी बेटियाँ/जिनके चेहरों से/यहाँ के सेब/रंग चुराया करते थे/(.....) बारूदी धुएँ में/काली पड़ गई हैं।

निदा नवाज़ की कविताएँ एक विस्थापित व्यक्ति के ऐसे उद्‌गार नहीं हैं जो अपने घर–बिछुड़े हुए घर को, बाहर खड़ा देख रहा है। कवि अपने आपको युद्ध और मौत के ऐन बीच पाता है— ***इस उलझन में हूँ/कि इन लाशों में/मेरी कौन-सी लाश है ?***

याद रखना होगा कि कवि अपनी सांस्कृतिक जड़ों को छोड़ या तोड़ नहीं पाता। उसकी आस्था 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका की आस्था से कहीं अधिक सशक्त और विराट है। मल्लिका एक सशक्त प्रतीक होने के बावजूद एक व्यक्ति है और निदा नवाज़ का कवि एक व्यक्ति होकर भी एक समष्टि है। इतिहास और वर्तमान— दोनों को एक साथ आत्मसात् करने वाला इयत्ता—

हमारे हाथों से हर समय/श्रद्धा की घंटियाँ बजती हैं/और हमारे इतिहास में... मधुर श्लोकों की मधु धारा बहती है/...विचार का हर बिन्दु/और श्रद्धा भरे सभी श्लोक रक्त-रंजित हो गए।

एक सांझी विरासत को सुरक्षित रखने का इरादा बहुत पक्का है उसके पास। इस इरादे को नहीं तोड़ पाएगा कोई मज़हबी जुनून। क्योंकि कविता हमें इन सारी स्थितियों से पार और परे ले जाती हैं— इतिहास को पुराण बनाने की क्षमता है उसके पास आज के युग में भी— ***जिससे प्यार हो/उसके साथ नाचना चाहिए/नंगे पाँव/अमावस की रात/किसी दूर द्वीप में/तलवों के रक्तरंजित होने तक.... !***

कवि के शिल्प में कहीं–कहीं झोल आ गई है। कुछ प्रयोगों में 'एक' के स्थान पर 'इक' का प्रयोग अनावश्यक दीखता है। 'मधुर श्लोकों की मधुधारा' में मधु अनावश्यक नहीं लगता क्या ?

निःसन्देह, निदा नवाज़ के पास कविता है— अनुभूतियाँ जो स्वतः शब्द बनके निकलती हैं। ऐसे कवि के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ !

डॉ.ओमप्रकाश गुप्त
(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग जम्मू
विश्वविद्यालय), जम्मू-180001.

○ निदा नवाज़ की ये कविताएँ

अच्छी किताब को किसी 'भूमिका' की बैसाखी की अपेक्षा नहीं होती। हाँ, लेकिन अच्छी किताब को भी सुधी, सहृदय पाठक की अपेक्षा ज़रूर रहती है।

पिछले 8-10 बरस से सहमी हुई कश्मीर की स्वर्गोदम वादी में, उसकी हज़ारों बरस पुरानी सँस्कृतिक परम्पराएँ अपने घावों पर मरहम लगाने वाले ममता-भरे हाथों की प्रतीक्षा में हैं, ऐसा लगने लगा है कि वादी की यह मौन प्रतीक्षा अब समाप्त होने पर आई है।

क्या यह सुखद आश्चर्य नहीं है कि वहाँ के इस काले दौर में भी साहित्य और सँस्कृति के दीप अन्धेरों से पराजित नहीं।

कश्मीर के युवा कवि निदा नवाज़ का यह कविता-संग्रह उसी तरह का एक दीप है। इस संग्रह में निदा नवाज़ की लगभग 13-14 बरस की साधना संकलित है। निदा नवाज़ की इस साधना की विशेष बात यह है कि उसने वादी में दहशत तथा वहशत के दौर में भी, वादी में रहकर ही अपनी यह काव्य-साधना परवान चढ़ाई है। निदा नवाज़ अपनी इस साधना में वहाँ अकेला होकर भी अकेला नहीं। ***कुछ कमी नहीं है/सब कुछ है अब/पास मेरे...../अधखिले फूल/भावनाओं की नदियाँ/आँसुओं की वर्षा....***

निदा नवाज़ अपनी ही आस्था और विश्वास से प्रेरित होकर इस समय शायद अकेला ही हिन्दी कविता की मशाल लेकर अंधेरे रास्ते में निकल पड़ा है। निदा नवाज़ का दर्द और उसकी आस्था के कुछ अंकुरों के नमूने देखिये।

1 ***आशा, पुष्प और सत्य की क्यारी/हठधर्मी से रौंधी जाए/दुःख होता है।***

2. ***सिरहाने रखे सपने/साँप बन जाते हैं/जब बारूद के धुएँ में पूर्णिमा/अमावस बन जाती है।***

3. ***आओ आज इस धरती पर/शान्ति की एक चादर बिछाएं/और यह प्रतिष्ठित करें/कि सारी मानवता की सफलता/केवल शान्ति में है।***

निदा नवाज़! मैं तुम्हारे लिए यही प्रार्थना करता हूँ: *"शुभास्ते पत्थानः सन्तु"*— तुम्हारे इस सफर की राहें बाधा-रहित हों।

३५, कर्ण नगर,
(जम्मू)

प्रो. रामनाथ शास्त्री
(पदम्श्री)

क्रमाँक

○ दो शब्द

हम ने शब्दों को अर्थ दिये
हम सरगोशियों और
मुस्कुराहटों की भाषा जानते हैं।
हम में जीवन की आत्मा में
झांकने का मनोबल है।
हमारे चेतना की डलझील हो
या हमारे विचारों की वितस्ता
हर जगह सपनों के अनमोल मोती
पानी की सतह पर
थिरकते हैं।
हमारे हाथों से हर समय
श्रद्धा की घंटियां बजती हैं।
और हमारे इतिहास में
एकता, प्यार और मानवता के
मधुर श्लोकों की
मधुधारा बहती है।
हमारे संसार में
कहीं नहीं होती है
निष्फल प्रतीक्षा और
टूटे सपनों की बातें।

हमारी धरती के पर्वतीय सरोवर में
शेर और बकरी एक साथ
पानी पीते हैं।
समय बीता जा रहा है
और कहीं से काले बादल के
आदमखोर टुकड़े ने
धूप की धरती को
अपनी चपेट में ले लिया।
शहर में दहकते पत्थरों की
वर्षा हुई।
सपनों के आकाश में
चांदनी बुझ गई।
और अमावस की रात
एक प्रश्न-चिन्ह बनकर
रूहों में बहुत्त सारे रेगिस्तान
बिछा गई।
अपमानित हो गया हमारा इतिहास।
हमारी शताब्दियों तक फैली
प्यारी पहचान बिखर गई।
चेतना की डलझील
और विचार की वितस्ता का
सारा पानी
बूँद-बूँद रक्त हुआ।
हमारे विवेक धरातल पर
कंटीली झाड़ियां उग आईं।
डर और पीड़ा
हमारे अंतरमन में
समा गई।

और हमारे सपनों के आँगन में भी
बंकर-बस्तियां बनने लगीं।
विचार का हर प्रकाश बिन्दु
और श्रद्धा भरे सभी श्लोक
रक्तरंजित हो गये।

अब हमारे पास
अर्पण करने को कुछ न बचा
केवल
रूपहली धूप की टूटी आशा
और यह घायल मन के बिखरे टुकड़े
मेरी कविताएँ
जिनको थरथराते हाथों से
रख रहा हूँ आपके हाथों में
इन कविताओं के हर शब्द का है
अक्षर-अक्षर रक्त-भरा।

निदा नवाज़
कोयल-पुलवामा-192301 (कश्मीर),

22 नवम्बर, 1997

○ चेतना-सरोवर के तट पर

मैं पूछता हूँ
साँझ की लालिमा से
क्या रक्त उसी रंग का नाम है
जो हमारे हर शब्द का स्वभाव
हर कविता का अभिमान
और हर पुस्तक का शीर्षक
ठहर गया ?

❐

मैं पूछता हूँ
घनघोर घटाओं से
क्या वर्षा उसी जल का नाम है
जो आँसुओं की नदियां बनकर
बहा ले जाती है आँखों से
सपनों के साथ–साथ
आदर भी ?

❐

"मैं पूछता हूँ
आकाश में उड़ते सूर्य से"
क्या न्याय उसी सत्य का नाम है
कि मनुष्य हर पल

सौ बार मरे
और फिर भी उस पर
जीवित होने का
कड़ुवा आरोप लगे ?

❐

मैं पूछता हूँ
पूर्णिमा के चंचल चाँद से
क्या प्रेम उसी शक्ति का नाम है
जो विश्वास के माथे पर
संदेह बनकर
लक्ष्मण-रेखा खिंचवाए
और अग्नि-परीक्षा ले ?

❐

मैं पूछता हूँ
इतिहास के पन्नों पर बिखरे
कठोर शब्दों से
क्या अनुभव उसी प्रकाश का नाम है
जो घटनाओं की उस नागिन की
मस्त आँखों से फूट कर वशीभूत करता है
जो डस लेती है
शरीर के साथ–साथ
आत्मा को भी ?

❐

मैं पूछता हूँ
प्रातःकालीन पवन की
शर्मीली आहट से
क्या वायु उसी आँधी का नाम है
जो हर बार मेरे

उस चेतना-सरोवर से गुज़रती है
जहाँ से उभरने वाले
सभी प्रश्नों के सूर्य
घायल होकर दबे पाँव
मेरे ही अवचेतना-सागर में
डूब जाते हैं ?

❐

प्रश्न करते-करते
मैं
थके हुए घोड़े की तरह
हाँफ जाता हूँ
और अपने
चेतना-सरोवर के तट पर
बैठे-बैठे मर जाता हूँ।

—— ❐ ——

○ बाँझ धरती

बाँझ धरती में
अधजले बीज
हम ही ने बोए थे।
और अब हम ही
भारी उपज की प्रतीक्षा में
भूखे मर रहे हैं।

—— ❐ ——

○ हत्या का अहसास

कभीं मेरी बस्ती के लोगों को
आकाश में सुर्खी देख कर
किसी जगह हुई हत्या का
अहसास होता था।
और अब
आकाश की सारी सुर्खी
मेरे शहर पर छा गई है।
और मेरी बस्ती के लोगों को
किसी हत्या का
कोई अहसास नहीं।

○ मेरी बस्ती में

मेरी बस्ती में
आज भी हैं
वह बड़ी-बड़ी कोठियाँ
लोहे और सीमेंट से बनी
खिड़कियों पर आकाशी रंग के पर्दे।

❐

मेरी बस्ती में
आज भी हैं
वह छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ
उन से आ रही खाँसने की आवाज़ें
कुछ ज़िन्दा लाशों की।
जिनका सर्वस्व
केवल दो रोटियाँ
और मैली-कुचली लंगोटियाँ।
इन झोंपड़ियों की कभी कोई
मर्यादा नहीं रही है
इन का सब कुछ रहा है
कोठियों के लिए।
किन्तु
उनका खून, उनका पसीना

एक प्रश्न बनकर
उभर आया है
उस सीमेंट और लोहे पर
और उस प्रश्न को
वे रेशमी आकाशी रंग के पर्दे भी
रोक नहीं सकते।
वे ऊपरी मंजिल पर लटकी
नीले रंग की तख्ती भी नहीं।
जिस पर बड़े शब्दों में लिखा है
"हाज़ा–मिन–फज़ले–रूब्बी"।
(यह सब प्रभु की ही कृपा है)

○ वितस्ता साक्षी रहना

वितस्ता तुम साक्षी रहना
कि मेरी आँखों का
काजल
और होठों की
लाली
तुम्हारे जल के साथ
बह गई।
मेरी छाती पर उगे
चिनार के वृक्ष
जो थके यात्रियों को
थोड़ी देर
अपनी छाया में रखकर
आगे बढ़ने की
प्रेरणा देते थे
जड़ से उखाड़ दिये गये।
मेरे संतान के सिर
भरी उपज की भान्ति
काट दिये गये।
तुम साक्षी रहना
वितस्ता
कि मेरी बेटियां
जिनके चेहरों से
यहाँ के सेब

रंग चुराया करते थे
बारूदी धुएँ में
काली पड़ गई हैं।
और तुम्हारी छाती पर
थिरकती किश्तियाँ
नए-नवेले जोड़ों की
सरगोशियाँ सुनने को
व्याकुल हैं।
तुम साक्षी रहना
कि तुम्हारा निर्मल जल
जो कभी
'हारी-पर्वत' के साथ-साथ
शंकराचार्य के मन्दिर को भी
प्रतिबिम्बित कर देता था
बूँद-बूँद रक्त हुआ है।
वितस्ता
तुम इस बात की भी
साक्षी रहना
कि अजनबियों के
भारी बूटों-तले
विकृत होकर
मैं
तुम्हारी जननी
घायल घाटी
अपना परिचय खो बैठी है।

○ कल्पना की दहलीज़ पर

मैं जब भी वहाँ जाता हूँ
उसी कोने वाली मेज़ के
एक तरफ़ बैठता हूँ
और ताकता हूँ
अपने सामने की खाली कुर्सी को
जिस पर कभी
तुम बैठती थीं।
ज़ाफ़रानी यादों की कलियाँ
खिल उठती हैं।
कल्पना की दहलीज़ पर
तुम्हारे पाँव की आहट
सुनाई देती है।
मेरे सामने तुम्हारी
दो ज़मुर्रदी आँखें
उभरती हैं।
मैं उनके इन्द्रजाल में
खो जाता हूँ।
धीरे-धीरे तुम्हारा
पूजा की रूपहली थाली-जैसा
चेहरा उभरता है।
और माथे का तिलक
जैसे आरती का दीया।
तुम अपना हाथ

मेरे हाथ पर रखती हो
लोहे को पारस छूता है
"हरमुख-पहाड़ी" से
पार्वती का आशीर्वाद लिए
कोई हवा का झोंका आकर
कमल की दो पत्तियों को
छेड़ता है।
और तुम्हारे दो कोमल होठों से
सरगोशियां फूटती हैं।
बातों-बातों में
तुम रूठ जाती हो
कल्पना की दहलीज़ पर
मैं तुम्हारे जाने की
आहट सुनतां हूँ।
मैं चौंक जाता हूँ
अपने सामने की
खाली कुर्सी को ताकता हूँ।
आँखों के आकाश से
आँसू के तारे
टप...टप... गिरते हैं
और मैं
मेज़ पर बिखरी
हर बूँद के दर्पण में
अकेला रहता हूँ
एकांत।

○ जीवन झाँकता है

जीवन बुझे हुए
चेहरे की पॉवडर-तले छुपी
हर उस झुर्री में से झाँकता है
जो ग्राहक के निकलते ही
पछतावे और मज़बूरी की पीड़ा से
और गहरी हो जाती है।

❐

जीवन पसीने की हर उस
पवित्र बूँद में से झाँकता है
जो एक अपमानित मज़दूर के माथे से
रोटी और पेट के बीच की
थका देने वाली दूरी
काटते हुए गिरती है।

❐

जीवन क़लम से टपकने वाले
हर उस कठोर शब्द में से झाँकता है
जो मेरे आदमख़ोर शहर में
अपनी घायल पीठ पर
घटनाओं-भरे इतिहास को
बंधुआ मज़दूर की तरह उठाता है।

जीवन मेरी कविताओं की
हर उस सिमटी हुई पंक्ति
में से झाँकता है
जो गोलियों की वर्षा में बैठे
डर और खौफ से
बीच में ही काट दी जाती है।

❐

जीवन समय की सूली पर चढ़े
हर उस व्याकुल पल में से झाँकता है
जब कविता के बीच में ही
विचार का चंचल पंछी उड़ कर
अंतरिक्ष के शून्य में
खो जाता है।

❐

जीवन हमारे दिलों की हर उस
बेतरतीब धड़कन में से झाँकता है
जो रात के समय
अजनबी कदमों की आहट सुनकर
दरवाज़े की कुंडी चढ़ाते हुए
गूँज उठती है।

—— ❐ ——

○ रणभूमि

गोरी हथेली पर
तुम्हारा मौन चेहरा
शांत
गम्भीर
प्रश्नों का एक ढेर लिए
जैसे सुनहरी थाली पर
अधखिला गुलाब।

❒

तुम्हारी पथराई आँखें
शापित
बर्फीली
उस स्वयंवर का
प्रतिबिम्ब लिए
जो देखते-देखते
रणभूमि में बदल गया
और अब अपने
राजकुमार की प्रतीक्षा में
टकटकी बाँधे।

❒

और तुम्हारा नख–शिख
पवित्र
क्रोध-भरा
जैसे अपने भक्तों से
रूठी देवी।

❐

आओ
कहीं तुम टूट न जाओ
इस पत्थर की नगरी में।
तुम्हें अपने मन-मन्दिर में
मैं बसा लूँ।
जहाँ श्रद्धा की घंटियाँ
तुम्हारे स्वागत में, कब से
बज उठने को उत्सुक हैं।

—— ❐ ——

○ सत्य का चाँद

चाँद से कहो
अभी न जन्म ले
आकाश की कोख से
धरती पर रहने वालों ने
हज़ार हाथों में
पत्थर ले रखें हैं।

—— ❐ ——

○ अपंग सोच

अंधेरी रात कब तक
प्रकाश के चैत्यों पर
व्यंग्य यूँ करती रहे ?
सोच कब तक
सिर झुकाए
कब तक
अपनी आहट से भी यूँ
डरती रहे ?
और कब तक
मौसम-ए-बारूद में
सोच के हत्याग्रह
सजाये जायेंगे ?
चेतना पर
चित्त पर
पहरे बिठाए जायेंगे ?
या कि नागिन के-से गुण
देखकर
अपने बच्चों को निगल ले जायेंगे ?
या कि अपने हाथ-पाँव काटकर
अपने अस्तित्व को अपंग करें ?
अपने विचारों की तरह
अपने विवेक की तरह।

○ अमावस

सिरहाने रखे सपने
साँप बन जाते हैं
जब बारूदी धुएँ में
पूर्णिमा, अमावस बन जाती है।

❒

बच्चों के पालने
प्रश्न बन जाते हैं
जब गोलियों की गूँज
लोरी बन जाती हैं।

—— ❒ ——

○ शाप

(शहीद मशीर-उल-हक़ और पाश के हर बच्चे के नाम)

मत रो, मुन्ने
तुम्हारे पिता-सा पाप
मैंने भी किया
और समय का शाप
मैं भी झेलूँगा।
तुम कल
मेरे बच्चों के संग
जी भर कर रोना।

—— ❒ ——

○ हर समय एक प्रश्न

हर समय सोचता हूँ
कि जीवन के
इन प्रश्नों के उत्तर
कहाँ से लाऊँ ?
और समय के पथ पर
उभरने वाली शंकाओं
की उलझन को
कैसे सुलझाऊँ।
हर कदम पर एक प्रश्न है
और हर मोड़ पर एक शंका
उभरती है।
अपने अनबूझे शब्दों से
उनकी निष्कृति ढूँढता हूँ
पर मिलती नहीं।

हर प्रश्न इक चोट
और हर शंका इक घाव
देती है।
हर प्रश्न के बहुत सारे उत्तर
और हर उत्तर के साथ

ढेर सारी शंकायें।
और मैं
इन प्रश्नों और शंकाओं में
डूबा जाता हूँ।
और अन्त में
खड़ा हो जाता हूँ मैं भी
अपने ही समक्ष
एक प्रश्न चिन्ह सा।

○ आदर्श

मेरे शहर में
आना हो तो
अपनी आँखें निकालकर
सिग्रेट-बिट की तरह
पाँव-तले मसल दो।
आदर्शों के सारे पन्ने
सूखी लकड़ी की तरह
जला दो।
क़लम की जीभ
किसी सिरफिरे के सिर की तरह
काट दो।
कि अब यहाँ
देखना, सोचना
और लिखना है
पाप।

—— ☐ ——

○ एक आरोप

(अपने ही अपहरण पर)

मेरी स्मृति में
इस मौसम के सभी
दृश्य हैं।
वह दृश्य भी जब कल
मेरी जीभ काट दी गई।
मेरे कानों में
पिघला सीसा डाला गया।
मेरी उँगलियाँ
तराशी गईं।
और यह कह कर छोड़ा गया
कि जा
हम तुम पर दया करते हैं
तुम्हें जीवित छोड़ कर।
अब मैं अधिकतर सोचता हूँ
कि क्या मैं सचमुच जीवित हूँ ?
या यह केवल एक आरोप है
जिससे मेरा सब कुछ
मेरी स्मृति में बसा पूरा संसार।
और उस संसार का
हर रूप, हर दृश्य
घायल होता जा रहा है
मेरे अतीत की भान्ति।

—— ❐ ——

○ कंटीली झाड़ियाँ

तुमने हमारे खेतों में
कंटीली झाड़ियाँ उगानी चाहीं
कि वह हमारे
सारे विवेक धरातल पर
फैल जाएँ।
और हमारे विचारों के पग
जहाँ भी जाना चाहें
घायल होकर वापस आएं।
तुमने सींचना चाहा
इन कंटीली झाड़ियों को
हमारे पचास हज़ार बच्चों के
ताज़ा-ताज़ा ख़ून से।
अब तुमने देखा कि
हमारे उज्जवल विचारों की
धूप पड़ते ही
तुम्हारी ये कंटीली झाड़ियाँ
मुरझा गई हैं।
काश, तुमने सोचा होता
कि यह काले बारूद की
कंटीली झाड़ियाँ
केवल काले विचारों की

बाँझ धरती में ही पनपती हैं।
और हमारी धरती
लल्लेश्वरी के शैव-दर्शन।
और नुन्द ऋषि के ऋषि-दर्शन
का प्यारा संगम।
इस धरती की झीलों में
कमल के फूल खिलते हैं
जो दृढ़ वैराग्य हैं
हमारे चरित्र के प्रतीक
देवी–देवताओं के आसन।
इस धरती के अंग–अंग में
उस केसर की सुगन्ध है
जो गुरूओं का न्यारा रंग है
और जिसका तिलक
दिव्य नेत्र को भी
आकार देता है।
हमारी धरती चिनार के वृक्ष
उगाती है
जिसकी हरित-शीत छाँव में
मन को शांति मिलती है।
हम तुम्हारी इन कंटीली झाड़ियों को
जड़ से उखाड़ देंगे।
कि अब सारे संसार को
इन कंटीली झाडियों की नहीं
शांति के महकते
फूलों की ज़रूरत है।

○ दिल, दिलबर, दिलदार की भाषा

हिन्दी है देवों की भाषा
तेरी-मेरी यह अभिलाषा।
प्यार की भाषा यार की भाषा
दिल, दिलबर, दिलदार की भाषा।
इस भाषा को फैलाएंगे
दूर-दूर तक पहुँचाएँगे।
इसकी सीमा उत्तर-दक्षिण
इसकी बाँहें पूर्व-पश्चिम।
भेद से, भय से ऊपर है यह
आर्यवर्त का सूत्र है यह।
अक्षर-अक्षर अमृत प्याला
शब्दों का है रूप निराला।
सागर-सागर जैसे पानी
आकाशों में इसकी वाणी।
संत कबीर के दोहों वाली
जायसी के शब्दों की पाली।
सूरदास का दर्पण है यह
मीरा का भी चिन्तन है यह।
आओ इसको दिल से लगाकर
नमन करेंगे शीष झुकाकर।

○ आत्मा में बसा मरुस्थल

आज मुझे छुपा लो
अपने पोर-पोर में।
मुझे समेट लो
आज मैं डर गया हूँ
बिखर गया हूँ
कि आखिर कब तक
सत्य न बोलने की पीड़ा को
चाय के कड़वे घूँट
के साथ बाँधे रहूँ ?
अपनी दम-घुटती आकांक्षाओं
बिखरी आहों
जवान चेहरे पर
उभरी झुर्रियों
और आत्मा में बसे
मरुस्थल पर
फीकी हँसी की चादर ओढ़ूँ।
अब मैं यह सब झेलते-झेलते
एक पत्थर बन गया हूँ।

—— ❑ ——

○ सीमा हो तो नीलगगन की

आओ
आज इस विशाल धरती पर
शान्ति की एक चादर बिछाएँ
और यह प्रतिष्ठित करें
कि सारी मानवता की सफलता
केवल शान्ति में है।

आओ कि
प्रकृति के इस मोहक चित्र से
आक्रोश की परत उठाएँ।

आओ
मारा-मारी अब बन्द करें हम
संकीर्णता से न डरें हम।
भेद-भाव की ज़िद हम छोड़ें
मानवता से मुँह ना मोड़ें।
और धरती से
विकट विनाश की छाया हटायें
शान्ति के हम गीत गायें।
और आज
इस धरती पर खींची गई

सारी आबड़-खाबड़ सीमाएँ
मिटायें।
और फिर
सीमा हो तो नीलगगन की।
भूख प्यास मिट जाये जग से
जीने को हर प्राण अकेला,
हो फिर आतुर।

○ काले बादल का टुकड़ा

दोपहर की रूपहली धूप को
जाते हुए मैंने भी देखा।
ऊँचे नंगे पर्वतों से
एक काले बादल का
टुकड़ा आया
और धूप की सारी किरणों को
समेट लिया।
नगर-नगर अंधियारा फैला
घर-घर से
चमगादड़ों की चीखें गूँजी।
पेड़-पेड़ पर
उल्लू बोले।
बादल के इस
काले बिच्छू ने
बुद्धि को भी डंक मार दिया।
लोग एक-दूसरे का माँस
नोचने लगे।
बेटे ने बाप को
काट के फेंका।
भाई ने भाई का
गला घोंटा।

हर एक के हाथ में
टूटी तलवारें।
हर एक के कपड़ों पर
अपने ही ख़ून की छींटें।
हर दिशा में
लाशों के ढेर।
उन पर झपटते
आवारा कुत्ते।
मंडलाती चीलें और कौए।
मैं
हड्डियों के पिंजरे के अन्दर
अपनी आँखों की ठिठकी ठहरी
सहमी बूँदों में
सिमट गया हूँ।
कौए, चीलें और
आवारा कुत्ते
मुझको एक हड्डियों का
पिंजरा समझ कर
छोड़ गए हैं।
और मेरी भर्राई आँखों में
यह रिसता सपना
कि उस दोपहर की
रूपहली धूप को
केवल एक बार मैं
फिर से देखूँ।
हड्डियों के पिंजरे से निकलूँ
आकाशों में उड़ जाऊँ।

○ यह परछाई कैसी

यह परछाई कैसी
पेड़ तले यह सिसकी किसकी।
कौन यह कन्या
किस की प्रतीक्षा ?
सीता बनकर कल भी रोई
रोना इसके जन्म-जन्म में
कैसी शक्ति शिव शंकर की ?
कैसी भक्ति राम रमय की ?
आओ फिर से इसको
शक्ति बनाकर।
दिल से लगाकर
दाग़ मिटाएँ मानवता से।

○ धरा के ज्योतिहीन

है धरा के ज्योतिहीन
किसको ढूँढ रहा है तू ?
गगन की ऊँचाईयों में
सागर की गहराईयों में
मस्जिदों और मन्दिरों में
न मिला है
न मिलेगा कभी।
भजन, पूजन
साधना, आराधना करनी है तो
कर मानवता की।
वह तो मानवता की माला में है
या फिर तेरे मन-मन्दिर में।
तेरे भीतर अन्तर-आत्मा तेरी
स्वयं तेरा परमात्मा है।

○ एक पूरी सृष्टि हूँ मैं

कुछ कमी नहीं है
सब कुछ है अब
पास मेरे।
मेरे भीतर की पूरी
सृष्टि में सब कुछ सिमटा
दुःखों के पहाड़
शंकाओं के जंगल
आशाओं के दिये
अधखिले फूल
भावनाओं की नदियाँ
आँसुओं की वर्षा।
अब आवश्यकता थी
तुम्हारे संग की
तुम्हारी कुछ स्मृतियों के रूप में।
और तुम्हारा यह संग
तुम्हारी स्मृतियाँ
हर पग पर मेरा साथ देती हैं
मेरे साथ रहती हैं
एक मधुर जीवन-संगिनी की तरह।

○ घायल घाटी

आज घाटी के लोगों ने
अपनी माँ को
अमृत पिलाया।
कि अमर हो जाए
मैया।
किन्तु अमृत में
विष मिला था।
घाटी का कण-कण
हो गया क्षत-विक्षत।
और घायल घाटी का
सारा शरीर हो गया
विष सागर।

○ वह तो चली गई

आह !
वह रूठ के कहाँ चली गई
चुपके से कहाँ चली गई।
उसका ज़िक्र अब
केवल एक सुन्दर स्वप्न लगता है।
उसकी स्मृति अब
एक मनोहर अतीत बन गया है।
जब से पुर्खों से उसका नाम सुना
तब से अक्सर सोचता हूँ
कैसी रही होगी।
मोहिनी सी सूरत
पवन सी कोमल
पानी सी निर्मल।
पर हाय वह तो चली गई।
शरमाई होगी
भूखों के खाली पेट देखकर
निर्धनों के नंगे शरीर देखकर
न्याय के हाथ में कशकोल देखकर।
डर और घबरा गई होगी
विष बुझे बाणों को देखकर।

बेचैन हो गई होगी
फिलस्तीन के बच्चों की
चीत्कार सुनकर
श्वेत अफ्रीकियों के
अत्याचार देखकर।
उकता गई होगी
लोहे की मशीनों को देखकर
रोबोट को देखकर।
लगता है सदैव के लिए
चली गई।
केवल अपना नाम छोड़कर
चार अक्षरों का
एक खोखला शब्द
जिसे कहते हैं
'मानवता'।

○ निष्फल उपासना

काँच के सपनों से
रात की शिला को काट कर
अपने मन-मन्दिर के लिए
एक प्रतिमा तराशना
उसी ने मुझे सिखाया था।
किन्तु सपनों के तीक्ष्ण टुकड़े
मेरी आत्मा को घायल कर गए।
और मन-मन्दिर में
प्रेम के सारे श्लोक
शंकाओं के धूप की
सूली पर चढ़कर
धुआँ हुए।
भावनाओं के टिमटिमाते दीप
प्रतिमा को ढूँढते-ढूँढते
शोक और शर्म से
अपने ही आँसुओं की
बाढ़ में डूबकर
आत्महत्या पर उतर आये।
विश्वास और श्रद्धा के सिजदे
माथे पर ही दम तोड़ बैठे

कि उसने मुझे
काँच के टूटे सपने
प्रेम के बेतरतीब श्लोक
भावनाओं के अधबुझे दीप
माथे पर शापित सिजदे
और रात की कठोर शिला तो दी।
किन्तु
अपने नाम की प्रतिमा
और मेरी नींद
मुझसे छीन ली।

○ साकार सपना

कल रात मैंने
एक सपना देखा
अचानक मेरी उँगलियाँ
लम्बी होती गईं
साँप बनती गईं।
और मेरे ही शरीर को
डसने लगीं।
और आज प्रातःकाल
जब मैं घर से निकला
रात्रि का सपना
मेरे घर के आँगन में
मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

○ पायल की झंकार भी दूँगी

(विरह गीत)

उज्जवल मुख और सुन्दर हर कण
निकले हो क्या बन-ठन, चन्दा।
आज रात तुम छत पर आना
दूँगी में यह तन-मन, चन्दा।

दुख होता है देख-देख कर
यहाँ-वहाँ से चलना तेरा।
दिल के द्वार खुले रखे हैं
आ जाना तुम एक क्षण, चन्दा।

छुप जाते हो बीच-बीच में
तड़पाते हो क्यों मन मेरा?
पलकों के रास्ते से आना
दूँगी में यह चितवन, चन्दा।

प्यार का इन्द्रधनुष भी दूँगी
और आँसू के कुछ तारे भी।
तुम आना मैंने रखा है
आँखों का एक गगन, चन्दा।

पायल की झंकार भी दूँगी
गजरे की महकार भी दूँगी।
बदले में माँगूंगी केवल
प्रीत का ही एक कंगन, चन्दा।

तेरे पग-पग फूल बिछाऊँ
हर एक पद पर गीत सुनाऊँ।
बिन्दिया का दर्पण भी दूँगी
तुम ही मेरे साजन, चन्दा।

बैठ के बालों की छाया में
होठों की मदिरा तुम चखना।
यौवन के सब बेर और जैफल
कर दूँगी मैं अर्पण, चन्दा।

बाँहों का बेला भी दूँगी
आँखों का जादू भी दूँगी।
और साँसों की यह गर्मी भी
तुम ही हो मन-भावन, चन्दा।

उज्जवल मुख और सुन्दर हर कण
निकले हो क्या बन-ठन, चन्दा।
आ:ज रात तुम छत पर आना
दूँगी मैं यह तन-मन, चन्दा।

○ लौ के सहारे

वह कह रही थी
हमें ऊपर जाना है
चाँद से भी ऊपर।
जहाँ हम एक दूजे के
दुःख–सुख बाँटें।
जहाँ हमारे सपने
दम न तोड़ें।
जहाँ हमारी आकांक्षा
बाँझ न बने।
जहाँ हमारा सम्बन्ध
कंगाल न निकले।
वह कह रही थी
थकना नहीं
साहस से काम लेना
मैं तुम्हारे साथ रहूँगी
तुम्हारी आशा बनकर।

मैं चलता रहा
उसके इस प्रोत्साहन के
दीप की लौ के सहारे

घोर अंधेरे में भी रास्ता निकालता रहा।
जब मैंने ऊपर
चाँद से भी ऊपर
अपने पीछा देखा
वहाँ
दम तोड़ते सपने
बाँझ इच्छाएँ
थोथे सम्बन्ध
मुझ पर हँस रहे थे।
मेरी आशा
पहले ही सोपान पर
टूट चुकी थी।
और उसका प्रोत्साहन
पहले सोपान के बीच खड़ा
एक प्रश्न बन गया था।

○ मैं तो घास हूँ, उग आऊँगा

(पंजाबी कवि, अपने मित्र पाश' की शहादत पर)

चलो उसे भी
काँधा दूँ
जिसको मैंने चाहा था
जीवन से भी अधिक।
जो हँसता था
किन्तु
उसके दिल की बेतरतीब धड़कनें
ठीक सुनाई देती थीं।
उसने सारे मजदूरों की पीड़ा
दिल में बसाई थी।
उनके दुःख-दर्द को
शब्दों का आकार दिया था।
मैं जानता था मारा जाएगा
कि वह लोगों को
दर्पण दिखाने निकला था।
कौन चाहता है यहाँ
देखना अपना यथार्थ
और कल जब मैंने
उसकी लाश देखी

मैं सोच रहा था
क्या यह सचमुच मर गया है ?
किन्तु
इसकी कविताएँ ही तो हैं
उसका जीवन, उसकी आत्मा।
और 'सत्य का सम्बन्ध' तो
होता है आत्मा से
आत्मा कभी मरती नहीं।
मैं इसी सोच में था कि
उसके होंठ जैसे हिलने लगे
और वह जैसे कहने लगा
अपने क़ातिलों से
"मेरा क्या करोगे
मैं तो घास हूँ, हर चीज़ ढक लूँगा
हर ढेर पर उग आऊँगा
मैं घास हूँ, मैं अपना काम करूँगा
मैं तुम्हारे सारे किए-धरे पर
उग आऊँगा।"

○ मेरे घर की चौखट पर

मेरे घर की चौखट पर
हर दिन
उगने वाले सूर्य की
हत्या होती है।
इस घर के दीवानख़ाने
मानव-रक्त से
हर पल, हर क्षण
रंगे जाते हैं।
और अब मुझे
दूसरे सभी रंग
अपरिचित लगने लगे हैं।
हर सुबह किसी-न-किसी
कोने में
कोई-न-कोई लाश
अलंकृत की जाती है।
और मैं स्वयं
इस उलझन में हूँ
कि इन लाशों में
मेरी कौन-सी लाश है ?

○ यादों का दर्पण

मेरी हर ओर यादें
और मैं यादों के इस दर्पण में
कभी रोता हूँ
कभी हँसता हूँ।
और यह हँसी हर समय
अधूरी रह जाती है
निर्धन षोड़षी के यौवन की तरह।
जो आने से पहले ही
चला जाता है
किसी सुन्दर स्वप्न की तरह।
और मैं खड़ा
ताकता रहता हूँ
इस दर्पण को
जो दर्पण मेरी छाया है
जो दर्पण मेरी आशा है।

❐

इस दर्पण से उभरता है
एक चित्र, ख़ामोश
अजन्ता की प्रतिमा की तरह।
गुम-सुम

एलोरा की गुफाओं की तरह
विरक्त
मेरी प्रेमिका का चित्र।
समय के हाथों
वो भी मजबूर
समय के हाथों
मैं भी क्षत-विक्षत
और यादों के इस दर्पण में
कभी रोता हूँ
कभी हँसता हूँ।

❒

इस दर्पण से
उभरते हैं कुछ चेहरे
धूल से लिथड़े हुए
भूमिपतियों के, किसानों के
बूढ़ों और जवानों के।
हर एक के चेहरे पर
एक ही प्रश्न
एक ही शब्द
रोटी, रोटी, रोटी—।
हर एक के अधरों पर
केवल मानवता के धर्म की
चर्चा
और भूख, प्यास की
निर्मम मार।
और यादों के इस दर्पण में
कभी रोता हूँ
कभी हँसता हूँ।

❒

इस दर्पण के हृदय से
उभरती है एक तलख़ आवाज़
जो कहती है
इस शताब्दी के लोगो
सभ्यता के दावेदारो
ऐ मानवता के मृत्युदाताओं
एक भारतीय-नारी पूछती है
एक ग़म की मारी पूछती है।
ये मेरी बहनें आज भी क्यों
आत्महत्याएँ करती हैं।
ये सीता और यह मरयम क्यों
भूखी-प्यासी मरती हैं।
और मैं
यादों के इस दर्पण में
कभी रोता हूँ
कभी हँसता हूँ।

—— ❒ ——

○ मेरे नाम की पुस्तक

आज मैंने फिर
वह पुस्तक खोली
जो समय की गर्द से
अटी पड़ी थी
और उलझ गया।
उसके पन्नों में
पहले ही पन्ने पर
मोटे अक्षरों में
दुर्घटना शब्द।
सब से बड़ी दुर्घटना
इस पुस्तक का आरम्भ
इसका जन्म।
और फिर हर पन्ने पर
दुख भरी कहानियाँ
मार-धाड़ भावनाओं की
आत्महत्या इच्छाओं की।
शायद संसार की
सब से दुखी पुस्तक
जो केवल रूलाती हैं
हँसाती कभी नहीं।

हर पन्ने पर
पढ़ने वाले ने
अपनी ऊँगलियों के
चिन्ह छोड़ दिए हैं।
इस पुस्तक के पन्ने
आँसुओं के अक्षरों से लिखे हुए।
प्रत्येक पन्ने पर
दुख, दर्द और घाव
और यह पुस्तक
इस पुस्तक-भण्डार में
मेरे नाम की पुस्तक है
स्वयं मैं।

○ जिससे प्यार हो

"जिससे प्यार हो
उसके साथ निकल जाना चाहिए"
सूर्योदय से पहले
बंकर-बस्ती से दूर
बहुत दूर
और पार करना चाहिए
भावनाओं के दरिया पर बनाया गया
विश्वास का वह पुल
जिसको धर्म की दहलीज़ पर बैठे
देवताओं ने गिराये जाने का
दंड दिया हो।

❏

जिससे प्यार हो
"उसे हमेशा पुकारना चाहिए
एक छोटे से नाम से"
और उसके साथ रचनी चाहिए
एक सांझी कविता
अपने हाथों की रेखाओं को
देकर शब्दों का आकार
और खोजने चाहिएं

आकाश पर
अपने भाग्य के तारे
अपनी इच्छा के ग्रह-पथ पर
डालने के लिए।

❐

जिससे प्यार हो
उसे पूजना चाहिए
दूर्गापूजा के दिन
वरदान में माँगना चाहिए
आँखों का एक पूरा आकाश
और समेटना चाहिए
अपने दामन में
एक-एक दमकता तारा
प्यार का।

❐

जिससे प्यार हो
उसके बालों में टाँक देना चाहिए
वसंत में खिलने वाला
पहला फूल
और उसको सुनाना चाहिए
सांझ समय
पूर्णिमा की रात
शरीर की दहकती आग में उपजा
चंचल विचार।

❐

जिससे प्यार हो
उसके साथ खरीदनी चाहिए
एक नैया

और एक महासागर
और निकलना चाहिए ढूँढने
डूबे हुए सत्य के सूर्य की लाश
किसी बर्फ़ानी तोदे के सीने में।

❒

जिससे प्यार हो
उसके साथ नाचना चाहिए
नंगे पाँव
अमावस की रात
किसी दूर द्वीप में
तलवों के रक्तरंजित होने तक
और देना चाहिए उसे उपहार
होठों पर झिलमिलाता, रस भरा
एक सलोना, नमकीन चाँद।

—— ❒ ——

○ प्रेम और धर्म

प्रेम का एक और रूप भी होता है
भय के चेहरे से उठा देना नकाब
और मानवता के बदले अर्थ को
फिर से अपनी जगह पर ले आना।

❒

धर्म का एक और अर्थ भी होता है
झूठ के चेहरे से उठा देना नकाब
और बचाकर किसी के जीवन को
स्वयं मौत के मुँह में चले जाना।

—— ❒ ——

○ पत्थरों का शहर

तुम
आज भी मेरे पास हो
मेरे बहुत निकट
स्मृतियों में ढली हुई
वैसी ही गुम-सुम।
अपने मुख पर
प्रश्नों का अम्बार लिये
प्यारे दिल का विस्तार लिये।

मैंने सारे जग की मिट्टी छानी
ढूँढे उनके उत्तर।
पर इस पत्थरों के शहर में
शीशे का कोई मोल कहाँ है।
मत रोओ, बिखराओ मोती
देखो मैं निराश नहीं हूँ।
इन कजरारे मस्त नयन का
आमंत्रण स्वीकार मुझे है।
आओ
रचें अपनी एक सुन्दर दुनिया
पुरातन यादों की मधुर पेड़ छाया में
वह पेड़ शहर से दूर
अलग।

○ घटाओं से परे

क्यों न इस समय
घटाओं से परे
नफ़रत और संकीर्णता के
क्षितिज से दूर
बहुत दूर
मानवता और केवल मानवता
के दीये जलाएं ?
खुले आकाश में रहकर
शत्रुता और भेद-भाव की
दीवारें गिराएं।
अपनी प्रेम-फुहार से
जलते पल की
आग बुझायें।
सृष्टि के उजले तन से
गर्द की परत हटायें।
टूटे स्वप्न को जोड़ें
दीन-दुःखी को
प्रीत की गोद में सुलायें।
पूर्व-प्रीत को ओढ़कर
सारी मानवता को

उन रास्तों पर डाल दें
जो शताब्दियों पर फैले हैं।
लल्लेश्वरी और नुन्द ऋषि
के रास्ते पर
जिनके माथे पर
हर क्षण सत्य का सूर्य
चमकता है।
आओ, मानवता के शब्द को
उसको छीना हुआ वह रूप
वापिस दिलायें
जो सूर्य की पहली किरण की तरह
सारे वातावरण को
चमकाता है।
आओ कि हमारा दर्द
केवल हमारा नहीं
तुम्हारे आँसू
केवल तुम्हारे नहीं
यह सारी मानवता का दर्द है।
यह हम सब का
सांझा दर्द है।

○ एक कविता

एक प्रतिबिम्ब
रात्रि के सन्नाटे में चीख़
किसी दुर्घटना की चेतना
मन-मंदिर के दीये की लौ
एक भूकम्प
गर्भवती के अन्तिम क्षण
मृत्युदण्ड पाने वाले की
अन्तिम इच्छा
या फिर एक कविता।

——☐——

○ नीलकण्ठ

जीवन का एक
सुन्दर रूप भी होता है
सारे संसार का विष पी लेना
और बन जाना
एक नीलकण्ठ।

☐

जीवन का एक
सुन्दर अर्थ भी होता है
अमृत की तरह
दुःख-दर्द पी लेना
और बन जाना
एक मनुष्य।

——☐——

○ बदलते हुए अर्थ

अन्तर की खेती में
बोए थे बीज
भाव-पुष्पों के।
किन्तु
उन्होंने अपने अर्थ बदल दिए
और काँटे बनकर
उगने लगे
चुभने लगे।

❒

अपने मन-मन्दिर में
जलाए थे कुछ दीप
कि प्रकाश दे देंगे
इस तमस् ग्रस्त चित्त को।
किन्तु
उन्होंने अपने अर्थ बदल दिए
और राख कर दिया
मेरे तन और मन को।

❒

उम्मीद की इक डोर बाँधी थी
कि बचा लेगी गिरने से
किन्तु
उसने भी अपना अर्थ बदल दिया
और फाँसी का फंदा बनकर
मुझको झूला दिया।

—— ❒ ——

○ दिल की लहरें

मैं
अपने हृदय के तट पर
बहती धारा को देखता जाऊँ
ताकता जाऊँ
कुदरत की कविता को देखूँ
निर्मल-निर्मल जल को देखूँ
चित्त के इस दर्पण को देखूँ
लहर-लहर इक विस्तार लेकर
हर ओर
हर रूत एक उमंग है
हर धारे में एक तरंग है।
और इन
लहरों के काँधों पर
शायद तुम हो
आशाओं का चप्पू लेकर
भावों की नैया लेकर।
और इस सागर जल के नीचे
लहरों के भीतर ही भीतर
दुख और दर्द
दब सा गया है

छुप सा गया है।
और मैं
झील के इस तट पर
लहरों के विस्तार को देखूँ
नैया और मंझधार को देखूँ
रोता जाऊँ
नीर बहाऊँ
मेरा अंग-अंग लोचन बनकर
रोता जाये
इतने आँसू बहाये
कि पलक झपकते ही
इक झील बन जाये
आँसुओं का।

(मेरी पहली हिन्दी कविता– 1983)

○ मैं भगवान नहीं हूँ !

तुम कहते हो
भूल जाओ इन दुःखों को।
किन्तु जब
हरे पत्तों के झुलसने का
दुःख हो
तीव्र आँधी में उजड़े नीड़ों के
बिखरने का दुःख हो।
बुद्धदेव के शापित होने का
दुःख हो
विश्व-स्वर्ग के
बाढ़-ग्रस्त होने का
दुःख हो
लाल रक्त के
सफेद होने का
दुःख हो
बर्फीले हाथों में
आंवां भरने का
दुःख हो।
तो मेरे मित्र
मैं किस-किस दूःख को भूलूँ ?
कि मैं भगवान नहीं हूँ
जो भूल जाऊँ
मैं मनुष्य हूँ
जो कुछ नहीं भूलता।

○ ओ मेरे शीशमन्दिर

कौन तुम पर
फैंक गया यह पत्थर
आह !
मेरे शीशमन्दिर
मुझे दुःख है।
कि मैंने चढ़ाया था
एक स्मृति कलश
जो गिर गया।
एक प्रतिमा थी
किसी के नाम की
टूट गई।
गिर गया आशाओं का
नादघंट।
फिर
सब कुछ हो गया
स्थिर।
कौन तुम पर
फैंक गया यह पत्थर
आह !
मेरे शीशमन्दिर
मुझे दुःख है।

○ तपस्या

तुम
तुम तो मेरी आशा हो
और मैं.....
मैं अब भी तुम से
निराश नहीं हूँ।
ये जग वाले
जन्म मरण के चक्कर से
चाहते मुक्ति।
मेरी इच्छा है
जन्म मरण के चक्कर की।
बस तेरे लिए
ताकि
किसी भी जन्म में
पा तुमको सकूं।
उस दिन होगी
सफल मेरी तपस्या।
और मैं पाऊँगा
उस दिन मुक्ति।

○ भीतर की टूट-फूट

मैं जीवन पथ पर
चल रहा था अकेला
हर तरफ वीराना था
हर दिशा ख़ामोशी थी
एक शान्ति सी थी
और
सुनाई दी कहीं से
आवाज़ें
टूट–फूट की
मारा–मारी की।
देखा चारों ओर मैंने
कहीं कोई न था
मेरे सिवा
कि वह आवाज़ें आ रही थीं
मेरे ही भीतर से।

○ तुम आओगी

स्वागतम्।
मैं जानता था
तुम अवश्य आओगी
और इसीलिए
मैंने पहले ही से
खोल रखे थे
दिल के किवाड़।
और स्वयं
इस दिल के प्रवेश मार्ग पर
तुम्हारे स्वागत के लिये
बैठा था।
कि तुम आओगी
और जलाओगी
इस अंधकारमय दिल में
दीप।

○ उपहार

मेरे लिए
हर दिन जन्म लेती हो
तुम।
कोमल सुबह बनकर
हरियाली के चेहरे पर
ओस बनकर।
मैं हर सुबह
चुनता हूँ कुछ स्मृतियों की दूबें
अपने भविष्य के लिये।
इस कारण हर दिन
तुम्हारा जन्मदिन है मेरे लिए।
और मैं हर दिन
तुम्हें एक नया उपहार
एक नई भावना देता हूँ।
कभी आँसू की माला
कभी एक नई कविता।

○ अग्नि कुण्ड

मेरा संसार
एक अग्नि कुण्ड है।
और मैं
एक उधेड़बुन में उलझा हूँ।
अपनी इच्छाओं की
अपनी भावनाओं की
आहुति दे रहा हूँ।
इस अग्नि कुण्ड में
जन्म-जन्म से
उठ रहा है धुआँ
मेरी इच्छाओं का
भावनाओं का।
इस धुयें ने मेरे चारों ओर
एक जाल बुना है
जिसमें मैं उलझ गया हूँ।
और केवल एक शून्य बनकर
रह गया हूँ।

एक शून्य
जो स्वयं कुछ नहीं होता है

किन्तु
दूसरों के हाथ लगकर
दूसरों को लाभ पहुँचाता है
दूसरों को खुश रखता है
और अपने लिए बुनता है
एक शाश्वत।
एक शून्य
अर्थहीन।

○ जाने कौन आस-पास होता है

(शाहिदा अलवी के नाम)

जब तुम नहीं होती हो
मेरे समक्ष
मैं अपनी डॉयरी खोलकर
अपनी कविताओं का
घूँघट उठाता हूँ।
धीरे-धीरे शब्द
जीवित हो जाते हैं।
अपना आकार
बदल देते हैं।
और तुम्हारे नख-शिख में
ढल जाते हैं।
बालों की बदलियाँ
लहराती हैं।
आँखों के दीये
जल उठते हैं।
होठों के कमल
खिल उठते हैं।
चेहरे के चाँद का
उदय होता है।

तुम्हारी सरगोशियाँ
फूटती हैं।
भावनाएँ उमड़ती हैं
कहकहे उबलते हैं।
थोड़े समय बाद
दूर शहर की
बंकर-बस्ती से
गोलियों की गूँज
सुनाई देती है।
चीखने-चिल्लाने की
आवाज़ें आती हैं
तुम सहम जाती हो।
बदलियाँ बिखर जाती हैं
दीये बुझ जाते हैं।
कमल मुरझा जाते हैं
चाँद को ग्रहण
लग जाता है।
और तुम
विलीन हो जाती हो।
मेरे समक्ष
कविताओं के
अंधे, गूँगे
और शापित शब्द
रह जाते हैं
कठोर और पथरीले।

○ मैं तो पहले ही कहता था

मैं तो पहले ही कहता था
पेड़ों पर बिजलियाँ मत गिराओ
परिन्दे तो उड़ ही जाएँगें
किन्तु
तुम्हारे उपवन की सारी टहनियाँ
जल कर भस्म हो जाएँगी
जिन पर आने वाले समय की
सारी सुगन्ध
और कुछ परिन्दों के जले हुए पर
विलाप करेंगे।

❑

मैं तो पहले ही कहता था
नफ़रत करने के अधिकार को
अपने नियम में जगह मत दो
कि नफ़रतों की बाढ़
फैलते-फैलते
तुम्हारे आँगन तक भी पहुँच जाएगी
और तुम अपने ही बच्चों की
अन्तिम हिचकियाँ भी
न सुन पाओगे।
मैं तो पहले ही कहता था
अपने चारों ओर

डर, तन्हाई और साम्प्रदायिकता की
कंटीली बाड़ मत बिछाओ
कि फिर विश्वास और मानवता
इसको फलांगते हुए
रक्त-रक्त हो जाएगी
और तुम्हारे अन्दर का मनुष्य
घुट-घुट कर
मर जाएगा।

❐

मैं तो पहले ही कहता था
मेरी उँगलियाँ मत काटो
कि इनसे टपकने वाले
ख़ून की हर बूँद से
एक ऐसी कविता रच जाएगी
जो तुम्हारी सारी तलवारों को
काट कर रख देगी।

❐

मैं तो यह भी पहले ही कहता था
कि प्रेम को शरीर का रूप मत दो
फिर भावनाओं की सभी
सुनहरी चिड़ियाँ उड़कर
उतनी दूर चली जाएँगी
कि तुम्हारे पास
न प्रेम की दहकती लपट रहेगी
और न
शरीर की धीमी आँच।

—— ❐ ——

○ सर्वव्यापी

हर एक जगह तुम ही तुम हो
जिधर भी देखूँ
जहाँ भी देखूँ
तेरे ही दर्शन मैं पाऊँ।
पत्तों में हरियाली बनकर
फूलों में कोमलता बनकर
पानी में निर्मलता बनकर
धूप में किरणों की धारा तुम
बदली में तुम वर्षा बनकर
जिधर भी देखूँ
जहाँ भी देखूँ
तेरे ही दर्शन मैं पाऊँ।

○ बिम्ब

एक आवाज़
मेरे भीतर से आती हुई।
यह तो परिचित भी नहीं
इसके साथ
कोई मित्रता भी नहीं।
एक भटके बादल का टुकड़ा-सा
या किसी टूटते तारे की
एक खौफ़नाक चीख़।
अन्तर के सन्नाटे को
चीरती हुई।
यादों के सागर से
आती हुई।
तुम्हारी आवाज़
और तुम
मेरा बिम्ब
कभी परिचित लगती हो
और कभी अपरिचित।

○ दुःख होता है

(फलस्तीनी स्वतंत्रता सेनानियों के नाम)

प्रातः कालीन सूर्य की
लालिमा को
काली बदली अगर छुपाए
दुःख होता है।

आँखों पर प्रतिरोध लगा कर
रात्रि को भी दिन बतलाए
दुख होता है।

पाप की काली चादर हर ओर
फैले, दिनकर
देखता जाए
दुःख होता है।

मानव को
मानव अधिकार के बदले
स्वतंत्रता के बदले
घाव मिले
गोली मिल जाए
दुःख होता है।
आशा, पुष्प और सत्य की क्यारी
हठधर्मी से रौंधी जाए
दुःख होता है।

○ मैं

मैं
जीवन की इस नदिया में
पत्थर सा पड़ा हूँ।
हज़ार पत्थरों के संग
हर पल हर दम
बहता हूँ।
इस यात्रा में रहता हूँ।
कभी पानी की तीव्र धार
ले जाती है अपने संग।
और कभी तट के साथ
पटक क़र चली जाती है, जलधार।
अन्तहीन इस पीड़ा यात्रा में
मैं अंश-अंश पिघल रहा हूँ
पानी में डूब कर
रख रहा हूँ अपना पानी।
अपने 'मैं' का
कर रहा हूँ निर्माण।

○ बिखरा व्यक्तित्व

कभी जो जीवन से
लगने लगे डर।
विपत्तियाँ कभी जो
उतर आयें तोड़ने
झकझोरने पर।
साहस का दामन
छूटने लगे हाथ से।
संकल्प का दम
घुट जो जाए कभी।
समय की तेज़ धूप
जो झुलसाये तुझे।
अतीत के आँगन में
तू बैठ लेना।
यादों के उस वृक्ष की छाँव-तले
जहाँ मैंने तुम्हारे लिये
खुशी की भावना
हंसी की प्रेरणा
साहस की डोर
संकल्प और विश्वास
रख छोड़े हैं।

उन्हें मेरा उपहार समझ कर
समेट लेना
मैं स्वयं उन्हीं में
मिलूँगा तुम्हें
बिखरा हुआ।

○ बाढ़-ग्रस्त स्वर्ग

कल सभी स्वर्ग–वासी
सोये थे
और बाढ़ आई।
स्वर्ग–वासियों की
सारी सम्पत्ति
बह गई
बिखर गई
किसी का शरीर
किसी के विचार।

○ सपनों की धरा

सपनों की धरा
सपनों का गगन
कुछ न्यारे तारे दे दो ना।
विश्वास की बदली छा जाए
प्रेम की वर्षा दे दो ना।
रिमझिम वर्षा की कोख में फिर
यह तन भीगे
यह मन भीगे।
और चाँद मेरी बाँहों में उगे
फिर मौन ही मौन तुम दे दो ना।
आशा की चंचल किरणें
हमको साथ-साथ पिघलाये ना।
मैं चन्दा में
और वह मुझ मे
फिर घुलमिल, घुलमिल जाए ना।
और पत्थर बनकर हम दोनों
एक प्रतिमा में ढल जाए ना।
सपनों की धरा
सपनों का गगन
कुछ न्यारे तारे दे दो ना।

○ शब्द-नाच

कल मेरे शहर में
शब्दों का नाच आरम्भ हुआ।
हर शब्द ने
अपना परिचय फेंक कर
एक मुखौटा पहना।
सत्य ने झूठ की
फटी चादर ओढ़ ली
और झूठ को सत्य का
सम्मान मिलने लगा।
इसी बीच वहम का नाग
मेरे कान में सुरसुराया
मुखौटे उतारने की
प्रतीक्षा नहीं करना
कि मुखौटे शब्दों के
चेहरों से चिपक कर
इनका पर्याय बन गये हैं।

○ जन्मदिन

दो फरवरी
उदास सांझ
शीतल मौन।
अंधियाते आकाश में
दूर बहुत दूर
वो तारा गिरा।
मैंने खिड़की का
दूजा पट भी खोला
और टूटते तारे में
उलझ गया
गुमसुम।
अपने पूर्वकाल के गगन पर
जहाँ हर क्षण ने मुझे
एक नये तारे के
गिरने की सूचना दी।
जहाँ केवल दुःख-दर्द
रिसते घाव
दम-घुटती इच्छाएँ
और
भय और लज्जा में
डूबा प्रेम।

मैं रुआँसा हो गया
भयभीत हुआ
मेरे समक्ष
मेरे मित्र
चेहरों पर मुस्कान लिए
दे रहे हैं
दीप जलाकर मुझको बधाई।
और मैंने
दीपों की लौ में खोकर
काँपते हाथों में
चाय का प्याला लेकर
छब्बीस वर्षीय कड़ुवाहट में मिलाकर
घूँट-घूँट नीचे उतारी।
इसके साथ ही
मेरे मित्रों एवं सम्बन्धियों ने
ताली बजाई
मेरे जन्मदिन पर।

○ यादें

जिन्दगी की आन हैं यादें
अतीत की पहचान हैं यादें
सृष्टि के इस स्वर्ण-मन्दिर में
हर मानव की जान हैं यादें
चित्त-दर्पण है टुकड़ा-टुकड़ा
हर टुकड़े की शान हैं यादें।

○ रात्रि का तिमिर

तुम से मिला
और विलीन हुआ मैं।
जैसे प्रातःकाल में
रात्रि का तिमिर।
या जैसे दार्शनिकता में
अर्थहीन बात।
तुम सूर्य और मैं
एक टूटा तारा।
तुम्हारा जो उदय हुआ
तो मैं खो बैठा
अपना अस्तित्व।

○ भीगी आँखें

शाम हुई और तारे
आकाश की टहनियों से
तड़प-तड़प कर गिरने लगे
पके फल की भान्ति।
मैंने अपने गगन के
चाँद को देखा
उसकी आँखें भीगी थीं।
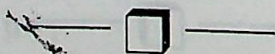
○ पलकों की टहनियाँ

आँखों के सरोवर-तट से
सुनहरे सपनों की सभी
चिड़ियाँ उड़ गईं
जब से पर्वतीय–पवन ने
पलकों की टहनियों पर
आँसू बनकर बसेरा किया।
मन-मंदिर में सजी
पुरखों की सभी चित्रमालाएँ
विलीन हो गईं
जब से कोमल श्लोकों के मधुर सुर
अर्थहीनता की घाटी में
भटक गए।

○ अक्षर-अक्षर रक्त-भरा

हमारे अपमानित इतिहास के
हर काले पन्ने का
अक्षर-अक्षर
रक्त-भरा है।

○ काँटों का उपहार

धन्यवाद तुम्हारा
क्षमा कर दो मुझे
मैं आया था कि
अतीत की कड़वी स्मृतियां
जो तुमने मुझको
पिला दी थीं विष की तरह
लौटा दूँ।
कह दूँ, इन्हें सुरक्षित रख लो
अपने लिये।
कि कड़वाहट मधुरता की
मित्रता में, सुन्दर
और बहुत प्यारी होती है।
प्रतीक्षा
मिलन की आशा पर की जाती है।
पर समक्ष मेरे बिछे हैं
केवल प्रतीक्षा के काँटे
और उम्मीद का कोई नाम नहीं।
यह जानकर भी
कहो मैं कैसे आगे जाऊँ।
तुम्हें वापस लौटा लूँ तो अच्छा है
तुम्हारा यह
काँटों का उपहार।

○ जब

जब......
सपने टूटकर
पीड़ा का रूप धरें।
सांस बिखर कर
विनाश का विलाप बने।
प्रकाश की कोख से
अंधकार जन्म ले।
विचार के स्रोत
रेंगते-रेंगते
साँप बनकर डसने का
प्रयत्न करें।
कलम की जीभ
लिखते-लिखते
बरछी बनकर
सभ्यता के सीने को चीरे।
धर्म के पेड़ पर
पाप उग आयें।
देवताओं का प्रसाद
विष बनकर
गले में ही अटक जाए।
तब विचार की वाणी
विवेक की वाणी
सिसक-सिसक कर
दम तोड़ती है।

○ भागलपुर

(भागलपुर में हुए साम्प्रदायिक दंगों पर)

संक्रीणता को ग्रहण कर
मानवता को तज कर
कौन हो गया है
इस प्रकार निर्वस्त्र ?
खून की नदियाँ
किसने बहा दीं ?
मानवता की लाश दफनाई
किसकी पुत्री नग्न पड़ी है ?
किसकी देह उधर सड़ी है ?
किसने यह सिन्दूर मिटाया ?
किसने यह घूँघट उठाया ?
कौन भक्त यह
कैसा धर्म यह ?
चाँद पर चढ़ने वाले लोगो
ए समाज के ठेकेदारो
भागलपुर की सड़कों की यह
खून की धारा पूछता है ?
ग़म का मारा पूछता है ?
राम की क्या इच्छा यही थी ?

मोहम्मद(स) का फ़रमान यही था ?
मस्जिद को इक कब्र बनाओ
मन्दिर को इक चिता बनाओ।
रीत जलाने की ही चली जो
नफ़रत को तुम क्यों न जलाते।
मार–धाड़ की रीत चली जो
बुरे विचारों को तुम मारो।
तुम सब दीवानों के आगे
मैं अधबुझे शब्दों का सौदागर।
फैलाए भिक्षा पात्र, माँगता हूँ
प्रेम की भीख
शान्ति की भीख।

समाज की आँखों से आँसू पोंछ कर
इनमें सारा प्रेम अंजकर
मेरी पीड़ा, मेरे दर्द को
कम कर दो।
मैं एक शब्दों का मतवाला
अपने कंपित हाथों में
थामे भिक्षा पात्र।
माँग रहा हूँ
भीख संस्कृति की
और मानवता की।

○ प्यार है खुशबू जिधर भी जाए

पहली बार मिले हम दोनों
मन्दिरों के शहर में जाकर।
खुशबू जैसी चढ़ी थी गाड़ी
मेरे निकट बैठ गई थी।
नज़रों की भाषा में हमने
बातें की थीं।
आँखों के लग्न–मण्डप में
एक-दूजे को
वर–मालाएँ पहनाई थीं।
मेरे पास थी इक पुस्तक
कविताओं की
सरगोशी में तुमने माँगी।
दिल की पुस्तक, प्यार की पुस्तक
दूधिया-हाथ में तेरे थामी।
बातें की थीं, बहुत-सी बातें

घायल-घाटी की थीं बातें।
उजड़े घरों की, बिछुड़े हुओं की
हत्यारों के कुकर्मों की बातें
मानवता के मरहम की बातें।
तुम ही ने तो यह भी कहा था
प्यार है खुशबू जिधर भी जाए
महकाती है दिल में फूल।
दिल ही दिल में, मैंने कहा था
तुम सरिता और मैं हूँ प्यास।

❒

निकाली गई थी शहर से अपने
उसी शहर में पीछे मुड़कर
मैं भी देखा
शाप लगा और पत्थर बना हूँ।
"पीते हैं हम लोग यह जीवन
फटे-दूध वाली चाय की तरह"
मैंने भी कुछ ऐसा कहा था।
गाड़ी रूकी थी एक मोड़ पर
हिरनी-जैसी तुम उतरी थीं।
पीछे मुड़ कर तुमने दी थी
एक मुस्कुराहट सूर्य-किरण सी।

सुनता हूँ मैं आज भी आहट
अपने दिल की पगडंडी पर
हिरनी के उस चलने की।
वह क्षण तो उपवन बना था
खुशबू से सब कुछ महका था।
दिल ही दिल में, मैंने कहा था
तुम सरिता और मैं हूँ प्यास।

(26 नवम्बर, 1997, जम्मू)

❐

○ हमारी अम्मा की ओढ़नी

वे जब आते हैं रात के समय
दस्तक नहीं देते हैं
तोड़ते हैं दरवाज़े
और घुस आते हैं हमारे घरों में।
वह दाढ़ी से घसीटते हैं
हमारे अब्बू को
छिन जाती है
हमारी अम्मा की ओढ़नी।
या हम एक दूसरे के सामने
नंगे किए जाते हैं
सिसकती है शर्म
बिखर जाती हैं रिश्ते।
वे नकाबपोश होते हैं
लेकिन
हम खोज ही लेते हैं उनके चेहरे
अतीत की पुस्तक के एक–एक पन्ने से
बचपन बिताए आँगन से
दफ़्तर में रखी सामने वाली कुर्सी से
एक साथ झुलाये हुए झूले से।
स्कूल की कक्षा में बैठे लड़कों से।
हमारे बचपन के आँगन पर
रेंगते हैं साँप ।

यमराज दिखाई देता है
हमारी सामने वाली कुर्सी पर।
जल जाती है
हमारे बचपन के झूले की रस्सी।
हम उस काली नक़ाब के पीछे छिपे
कभी उस लड़के का चेहरा भी देखते हैं।
जिसको हमने पढ़ाया होता है
पहली कक्षा में।
वे जब आते हैं रात के समय
ले जाते हैं जिसको वे चाहें घर–परिवार से।
और कुछ दिनों के बाद
मिलती है उसकी लाश
किसी सेब के पेड़ से लटकी
या किसी चौराहे पर लुथड़ी।
मारने से पहले वे
लिख देते हैं अपना नाम
उसकी पीठ पर
आतंक की भाषा में
दहकती सलाखों से
आग के अक्षरों में।
वे जब आते हैं
दस्तक नहीं देते हैं
तोड़ते हैं दरवाज़े
रौंदते हैं पाव तले
हमारी सस्कृति को
हमारे रिश्तों को
हमारी शर्म को।

———❑———

निदा नवाज़

जन्म – २ फरवरी १९६३

शिक्षा – एम.ए. एज्युकेशन, उर्दू,
बी.एड. (कश्मीर विश्वविद्यालय)
हिन्दी साहित्य (पी.यू.)

सचिव कश्मीर हिन्दी लेखक संघ

अध्यक्ष जिला लेखक संघ, पुलवामा

सदस्य मराज़ कल्चर्ल फोर्म कश्मीर

सम्पर्क कोयल पुलवामा, १९२३०१ कश्मीर
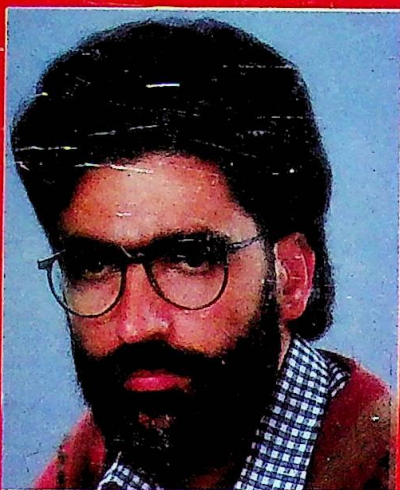
इस संग्रह में निदा नवाज की लगभग 13-14 बरस की साधना संकलित है। निदा नवाज़ की इस साधना की विशेष बात यह है कि उसने वादी में दहशत तथा वहशत के दौर में भी, वादी में रहकर ही अपनी यह काव्य-साधना परवान चढ़ाई है। निदा नवाज़ अपनी इस साधना में वहाँ अकेला होकर भी अकेला नहीं। **रामनाथ शास्त्री** (पदम्श्री)

कवि अपनी सांस्कृतिक जड़ों को छोड़ या तोड़ नहीं पाता। उसकी आस्था 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका की आस्था से कहीं अधिक सशक्त और विराट है। मल्लिका एक सशक्त प्रतीक होने के बावजूद एक व्यक्ति है और निदा नवाज़ का कवि एक व्यक्ति होकर भी एक समष्टि है। इतिहास और वर्तमान— दोनों को एक साथ आत्मसात् करने वाला इयत्ता—

ओमप्रकाश गुप्त